. त्रयोदशोऽध्याय: क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग[सम्पाद्यताम्] ॐ

अर्जुन उवाच

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।

एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ।।

प्रकृति और पुरुष में, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ भेद।

इच्छुक हूँ केशव बता, ज्ञान ज्ञेय का भेद ।।१३-१।।

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

हे अर्जुन यह जान ले, तन क्षेत्र कहलाय।

इस तन को जो जान ले, क्षेत्रज्ञ बन जाय ॥१३– २॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

हे अर्जुन हर जीव का, रखता मै सब ध्यान।

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ जान ले, कहलाता ये ज्ञान ॥१३– ३॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥

सार तुम मुझसे सुनो, कर्म क्षेत्र का राज।

क्यूँ बनता बदलाव क्यों, किसका है यह काज ॥१३– ४॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥

ज्ञानी लोग अनेक कहे, भिन्न तरह से वेद।

ब्रह्मसूत्र के वचन से, जान सके सब भेद ॥१३– ५॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।

इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥

पाँचभूत व तीन गुणी, बुद्धि अहम अपार

मन के संग दस इंद्रियाँ , पाँच विषय के द्वार ॥१३– ६॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।

एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

इच्छा सुख दुख द्वेष भी, चित्त धैर्य को जान।

कर्म क्षेत्र ही सार है, यही क्षेत्र का ज्ञान ॥१३– ७॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥

नम्र अहिंसक दंभहीन, सहज सबल संग शील।

गुरु संगत भी हो पवित्र, स्थिर हो संयमशील ॥१३– ८॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

इंद्रियों से बैरागी , अहंकार ना द्वार

रोग बुढ़ापा जन्म मरण, हो अनुभूति विकार ॥१३– ९॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

आसक्ति जो ना रखे, घर औरत संतान।

रहती है सम भावना, अच्छा बुरा न भान ॥१३–१०॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

मुझमें भक्ति हो अनन्य, बिना किसी व्यवधान।

रमा रहे एकांत में, नही भीड़ का ध्यान ॥१३– ११॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

आत्म ज्ञान के साथ ही, दर्शन सत सज्ञान।

ज्ञान कहाते ये सभी, बाकी सब अज्ञान ॥१३– १२॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।

अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥

सदा योग्य ही जानना, अमृत सा है सार।

मुझसे ब्रम्ह अनादि है , सत् ना असत विचार ॥१३– १३॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

हाथ पाँव सिर आँख मुँह, फैले फैले कान।

बसे परम संसार में, व्याप्त सभी में जान ॥१३– १४॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥

मूल इंद्रियों का वही, इंद्रिय रहे विहीन।

सभी गुणों को साथ रख, मगर रहे गुणहीन ॥१३– १५॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥

बाहर भीतर वो बसे, हो वो जीव अजीव।

देख न पाये सूक्ष्म को, दूर मगर सह जीव ॥१३– १६॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥

बँटा नही फैला हुआ, विद्ध्यमान हर ओर ।

पालन भी संहार भी, उसके कार्य कठोर ॥१३– १७॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

हर ज्योति की ज्योत वही, नहीं तमस का नाम।

ज्ञानी भी वो ज्ञान भी, कण–कण उसका धाम ॥१३– १८॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।

मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥

क्षेत्र ज्ञान व ज्ञेय को, तुझे कहा है सार।

भक्त मेरा ही जान सके, पा ले मुझको पार ॥१३– १९॥

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ॥

प्रकृति हो या जीव हो, रहते अनादि काल।

हो विकार या त्रिगुणामय, प्रकृति काज कमाल ॥१३– २०।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।

पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥

कारण सह परिणाम है, इस निसर्ग का नाम।

सुख दुख को है भोगना, जीव आत्म का काम ॥१३– २१॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

जीव जग में वास करे, भोगे गुण परिणाम।

प्रकृति संग कारण बने, भिन्न योनि परिणाम ॥१३– २२॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।

परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥

साक्षी बन सूचित करे, ईश्वर सा है काम।

परमात्मा सब में बसे, दिव्य पुरुष में धाम ॥१३– २३॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

जो समझे जीवन जगत , रखे गुणों का भान।

वर्तमान जैसा रहे, मिले मुक्ति सम्मान ॥१३– २४॥

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।

अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

जरा देखते ध्यान से, बसते मन भगवान।

तो कुछ जाने ज्ञान से, कर कुछ कर्म महान ॥१३– २५॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

आत्म ज्ञान से कुछ रहित, सुन पूजे भगवान।

वो भी भव सागर तरे, सुन कर प्रभु की तान ॥१३– २६॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥

उपजे जो भी जगत में, जीव हो या अजीव।

संयोग क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का, समझो तुम गांडीव ॥१३– २७॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

सभी जीव सम भाव हो, परम आत्म का वास।

नाशवान व नाशरहित, देख सके वो खास ॥१३– २८॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

देखे सब समभाव से, ईश्वर सदा सजीव।

हीन भाव रखता नहीं, पार लगे वह जीव ॥१३– २९॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।

यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥

प्रकृति ही सब कुछ करे, जितने भी है काम।

आत्मा तो बस देखती, करते अपने राम ॥१३– ३०॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥

रूप अनेकों जीव के, देखे जो सम भाव।

समझे जो विस्तार को, समझे ब्रह्म स्वभाव **॥१३– ३१॥**

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

नित्य ये निर्गुण आत्मा, अविनाशी निष्काम।

हे पार्थ हर जीव बसे, लिप्त ना रहते काम ॥१३– ३२॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।

सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥

सर्वव्यापी सूक्ष्म भी, अलिप्त यह आकाश।

लिप्त आत्मा भी नहीं, जैसे जीव में श्वास ॥१३– ३३॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥

आलोकित यह लोक है, जैसे सूर्य कमाल।

हे अर्जुन आत्मा बने, जीवन की हर चाल ॥१३– ३४॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥

ज्ञानचक्षु से देख ले, जीव आत्म का भेद।

मोक्ष मार्ग वो जान ले, मिल जाये सब वेद ॥१३– ३५॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥